शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 जुलाई 2018
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

डॉ. दामोदर खड़से के उपन्यासों में उत्तर आधुनिक विमर्श

श्वेता दीक्षित (शोधार्थी)
अमरावती विद्यापीठ
अकोला, महाराष्ट्र, भारत

शोध संक्षेप

भूमंडलीकरण के बाद जीवन के सभी क्षेत्रों में परिवर्तन की गति तीव्र हुई है सभी जगह एक प्रकार का अस्थायीत्व दिखाई देता है। उपभोक्तावादी संस्कृति के विस्तार ने चीजों को देखने के प्रति दृष्टि को बदल दिया है। एक अजीब किस्म की बेचैनी से भरा व्यक्ति अपने क्षणभंगुर जीवन में सब कुछ पा लेना चाहता है इससे उपजने वाले असंतोष, पीड़ा, संत्रास, कुंठा जैसे तत्व मनुष्य को मानसिक रोगों की तरफ धकेल रहे हैं। इन परिस्थितियों को समझते हुए भी वह उनका दास बनकर अंधी सुरंग में दौड़ा चला जा रहा है। प्रवाह के किनारे पर बैठे हुए सजग साहित्यकार इन्हें सूक्ष्म दृष्टि से देख रहे हैं और उनका चित्रण अपने साहित्य में कर रहे हैं। डॉ.दामोदर खडसे उन्हीं साहित्यकारों में से हैं, जो अपने आस-पास के परिवेश से कथानक लेकर ताना-बाना बुनते हैं। पात्रों के व्यवहार में पाठक स्वयं को तलाशता है। प्रस्तुत शोध पत्र में डॉ.खड़से के उपन्यासों में उत्तर आधुनिक विमर्श की चर्चा की गयी है।

प्रस्तावना

डॉ. दामोदर खड़से उन प्रतिभाओं में से हैं जिनके कृतित्व में मध्यवर्गीय जीवन के सुख-दुख की सुगंध है पाठक उनके कथा-संसार में रमकर आत्मसंतोष और सुख प्राप्त कर लेता है। खड़से जी मराठी भाषा-भाषी हैं, मगर इनकी क्रिया-कर्म और रचना की भाषा हिंदी है। इन्होंने मराठी की कई महत्वपूर्ण पुस्तकों का हिंदी में अनुवाद किया है, जिनमें आत्मकथा और नाटक अधिक हैं। 57 पुस्तकों पर 58 पुरस्कार प्राप्त करने वाले खड़से जी यथार्थ को अनुभव करते हैं, उसे जीते नहीं। उसे शब्दों में बाँधने की शक्ति उनमें हैं खड़से जी मराठी भाषा-भाषी हैं, मगर इनकी क्रिया-कर्म और रचना की भाषा हिंदी है। इन्होंने मराठी की कई महत्वपूर्ण पुस्तकों का हिंदी में अनुवाद किया है जिनमें आत्मकथा और नाटक अधिक हैं। 57 पुस्तकों पर 58 पुरस्कार प्राप्त करने वाले खड़से जी यथार्थ को अनुभव करते हैं, उसे जीते नहीं। उसे शब्दों में बाँधने की शक्ति उनमें हैं। दामोदर खड़से एक साथ कवि, कथाकार, उपन्यासकार, संस्मरण-लेखक, वार्ताकार और अनुवादक हैं। उन्होंने तीन उपन्यासों की रचना की है - काला सूरज , भगदड़ और बादलराग।

दामोदर खड़से एक साथ कवि, कथाकार, उपन्यासकार, संस्मरण-लेखक, वार्ताकार और अनुवादक हैं। उन्होंने तीन उपन्यासों की रचना की है - काला सूरज , भगदड़ और बादलराग। निर्मल जैन ने उनके बारे में लिखा है, "आठवें दशक के चर्चित कथाकार, दामोदर खड़से का कथा साहित्य इक्कीसवीं सदी की दहलीज पर खड़ा उत्तर आधुनिकता, अमेरिका बाजार, प्रिंट और इलेक्ट्रानिक मिडिया से अपनी अपसंस्कृति के विरुद्ध लड़ते-झगड़ते हुए जहां पारिवारिक-सामाजिक संबंधों का ठंडापन और उष्मा, रिश्तों की विसंगतियाँ, दिन-प्रतिदिन मनुष्य के भीतर से मरती जा रही संवेदना कथाकार की रचना की

मूल चिंता है।"[1] उत्तर आधुनिकता में तीन सन्दर्भ मत्वपूर्ण हैं : भूमण्डलीकरण, नारी विमर्श, पूंजीवादी विमर्श। डॉ. दामोदर खड़से जी द्वारा लिखित तीनों उपन्यासों में भूमण्डलीकरण, बाज़ारवाद तथा नारी विमर्श परपस्पर साथ चलते दिखाई देते हैं। इसके बावजूद अलग-अलग उपन्यासों में एक-एक विमर्श का महत्व देख सकते हैं।

'भगदड़' उपन्यास और भूमण्डलीकरण

डॉ.दामोदर खड़से का उपन्यास 'भगदड़' समाज के मध्यवर्गीय परिवारों के यथार्थ का अनावरण करनेवाला उपन्यास है। ज्यों-ज्यों उपन्यास के पन्नों में पाठक आगे बढ़ता है त्यो-त्यों ऐसा महसूस होता है जैसे लेखक ने पाठक को ही कथा का नायक बनाकर उपन्यास की रचना की है। उपन्यास की घटनाएं पाठक की अपनी जिंदगी से मेल खाती हैं। फिर चाहे महावीर प्रसाद हो, महावीर प्रसाद की पत्नी हो, चाहे बबुआ (कृष्णा), बहू या विनोद ही क्यों न हों। इस उपन्यास में आम आदमी की निजी जिंदगी की रोजमर्रा की समस्याएँ, उनकी व्यक्तिगत जिंदगी की मानसिक उलझनें, त्रिशंकु का अनुभव सब जैसे पाठक के अन्तर्मन से निकालकर लेखक ने कागजों में उतार दिया है। चाहे वह माता-पिता के दिमाग का अंतर्द्वन्द्व हो, चाहे आज्ञाकारी और वफादार पुत्र से रूपांतरित हुए ईमानदार पति कृष्णप्रसाद के मन की उलझन हो। सभी कुछ जिंदगी से उतरकर लेखक की लेखनी से गुजरता हुआ कृति में ब्दील हुआ है। लेखक ने इस उपन्यास में भूमण्डलीकरण तथा पूंजीवाद के प्रभाव को दर्शाया है, जिसमें गाँव के सहज धरातल में पले-बढे पात्र महानगर के आकांक्षी होकर उसकी चकाचौंध को देखना और उसे छूने की लालसा रखते हैं। अंधी दौड़ में अपना नाम दर्ज करना चाहते हैं। इस सबकी अंतिम परिणति हार ही है।

'भगदड़' मध्यम वर्ग की अपनी समस्याओं, सीमाओं और संभावनाओं की कहानी है, जिसमें महानगरीय सभ्यता के पैने डंक पाठक को लहूलुहान करते हैं लेकिन गाँव की मिट्टी में रची-बसी जीवन की आस्था इसे देखकर रोमांचित, हर्षित होती है।"[2] महावीरप्रसाद कस्बाई संस्कृति में पले, रचे-बसे स्कूल के हेडमास्टर पद से रिटायर्ड पेंशन पानेवाले संवेदनशील व्यक्ति हैं। वे 'भगदड़' के नायक हैं। उनकी पत्नी पूर्णत: समर्पित भाव से सेवा करती है। उनका इकलौता पुत्र कृष्णा अपना गाँव छोड़कर मुम्बई का निवासी हो गया। उसकी पत्नी श्वेता महानगरीय संस्कृति में पली-बढ़ी है। दोनों की लड़की कृष्णा पर महानगरीय छाप लगना शुरू हो जाती है। महावीर प्रसाद को गले में तीन गांठे हो जाती हैं। उन्हें कैंसर की आशंका है। वे जांच के लिए मुम्बई पहुंचते हैं उनका बेटा कृष्णा बैंक का मुलाजिम है। श्वेता भी नौकरी करती है। महावीर प्रसाद के मुम्बई पहुँचने पर घर में भय का वातावरण निर्मित हो जाता है। मुम्बई में बाहरी भगदड़ तो है ही, अब घर के भीतर 'मानसिक भगदड़' प्रारंभ हो जाती है। टाटा मेमोरियल हास्पिटल में जांच होने के बाद पता चलता है कि महावीरप्रसाद को कैंसर नहीं है बल्कि ट्यबरकुलोसिस (टी.बी) है। इसी बीच लेखक ने हर पात्र के असली चेहरे को पूरी ईमानदारी के साथ उजागर करने का प्रयास किया है। महावीरप्रसाद भीतर ही भीतर आहात होकर जीवन की विसंगतियों के शिकार हो गए हैं। कृष्णा की पराजय.सारी चमक फ्लैट के बाहर छूट गई थी। श्वेता के प्रेम की गहरी संवेदना और

आत्मीयता स्वार्थ की तंग गलियों में खो जाती है। 'भगदड़' का कथानक गांव से महानगर तक प्रत्येक मध्यवर्गीय परिवार की कहानी है, जो अपने चारों ओर के परिवेश में बिछड़ती संवेदना, टूटते रिश्ते, दुर्लभ होते जा रहे साधन व सिर पर एक छत के लिए लंबी लड़ाई के बीच सुकून ढून्ढ रहा है। इसमें व्यवस्था के प्रति आक्रोश है तो कहीं मुक्ति की छटपटाहट तो कहीं जीवन का उत्साह जो संघर्षों के बीच राह ढूंढ लेता है।

'बादल राग' और नारी विमर्श

'बादलराग' उपन्यास नारी विमर्श पर आधारित है। 'बादलराग' एक प्राकृतिक प्रतीक अर्थवाला शीर्षक है। अपने पात्रों के ही माध्यम से ही लेखक कहता है। ''शायद ही कोई दिन होगा जिसमें विकास का उसने अहसास न किया होगा। रह-रहकर विकास बादलराग की तरह सुनिधि पर निरंतर बरसता रहता है। अब उसके सामने उसका करयिर पूरे समय की मांग करता है, जिसे वह शिखर तक पहुंचाना चाहता है...सर्वोच्च शिखर तक। इसके लिए उसके सामने कोई समझौता करने का सवाल ही नहीं उठता। उसने पूरे समर्पण के साथ इस करियर को जीना शुरू कर दिया था। केवल एक राग बादल की विभिन्न छटाएं लेकर उसके चेतन-अचेतन में मँडराता रहता है, वह है विकास!"

उपन्यास की नायिका सुनिधि अपने जीवन का अहम निर्णय लेती है। उसके जीवन में तीन पुरुष आते हैं। पहला पुरुष उसका पति, दूसरा विकास और तीसरा पुनीत। पहले रिश्ते को वह चली आती परम्परा से निभाती है। दूसरा पुरुष विकास उसके जीवन के चिंतन का अभिन्न अंग है। उसके बिना सुनिधि अपने जीवन की कल्पना नहीं कर सकती। वह भलीभांति जानती है कि विकास का अपना परिवार है। वह परिवार को विश्रृंखलित भी नहीं करना चाहती। उपन्यास का कथानक दिल्ली हवाई अड्डे पर नायक विकास की मनोदशा से प्रारंभ होता है। वह बड़ी व्यग्रता से सुनिधि से मिलना चाहता है। छिपा-छिपौवल के खेल का आभास और संकेत वहीं मिल जाता है। कथा के अंत में नायिका सुनिधि अपने जीवन से संबंधित निर्णय लेकर विकास से कहती है 'मैंने अब अकेले ही रहने का फैसला कर लिया है'। नायक की मानसिकता से प्रारंभ और नायिका के फैसले से समाप्ति। इस बीच पूरे उपन्यास में बादलर राग ध्वनित होता है, छाया रहता है , छाया देता है वह सभी पात्रों में है। शीर्षक प्रतीकात्मक है जो ध्वनित है। प्रेम जल के बिना बादल की निर्मिति ही नहीं होती। यह भी सच है कि स्त्री रूपिणी धारा के जल से ही उसकी निर्मिति है। वह तो बादल के राग से ही इस कदर परिपूरित है कि वह चिंतनों में मँडराना ही नहीं चाहती। बादल से जो प्रेम झरता है उसी के सहारे, उसी के भरोसे सुनिधि पूरा जीवन प्रसन्नता के साथ जीने का निर्णय लेती है। उसके निर्णय नहीं फैसले में असमंजस या पछतावे की कहीं गंध नहीं है। सन् 2000 में लखनऊ में एक संगोष्ठी में डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल ने कहा था "उत्तरआधुनिकता में हरम, हरामी, हरामजादों का चित्रण है। उत्तरआधुनिकतावाद का वह प्रारंभकाल था। आगे चलकर नारी विमर्श के नाम पर क्या-क्या ज्यादतियां हुई हैं, वे किसी से छिपी नहीं हैं। वर्ष 2014 तक आते-आते अतिवादिताओं के प्लावन में कुछ ठहराव आया। पानी कुछ साफ हुआ और इसी बीच में डॉ. दामोदर खड़से जी का बादलराग छपकर आया। जिसमें विषय की मौलिकता के साथ-साथ प्रेम और काम की उदात्तता का स्वरूप वर्णित हुआ है। उदात्तता के चक्कर में अक्सर

ऐसा होता है कि लेखक की कलम आदर्शों की ओर झुक जाती है और फिर उसके पात्र अव्यवहारिक हो जाते हैं। बादलराग के पात्र इस बीमारी से बचे हैं। वे कहीं भी अव्यावहारिक नहीं हैं। परिस्थिति के अनुरूप सोच है।"

सुनिधि का वैवाहिक जीवन ध्वस्त हो चुका है। वह नितांत अकेली है। स्वाभाविक होता यदि वह फ्रस्टेशन का शिकार हो जाती। संयुक्त परिवार व्यवस्था में एक-दूसरे को संभालने वाले लोग थे। लोगों को पता ही नहीं चलता था कि कौन किसकी संतान है। उस समय अकेलापन नहीं था। परिवार में सब निभ जाते थे। आज स्थिति भिन्न है। नई पीढ़ी को मनचाही चीजें नहीं मिलती तो फ्रस्टेशन का शिकार हो जाता है। उससे बाहर आने के लिए, उबरने के लिए चिकित्सक के आश्रय में जाना पड़ता है। किसी विवाहिता के लिए ससुराल छोड़ना सबसे बड़ा आघात होता है। सहन कर पाना कठिन होता है। नायिका सुनिधि इसी दौर से गुजरती है। पर वह फ्रस्टेशन में बीमार होकर आत्महत्या की ओर नहीं मुड़ती, अपितु आत्मविश्वास से फिर उठ खड़ी होती है। इसमें सहायक होती है उसकी नौकरी और विकास। आज की पीढ़ी की पढ़ी-लिखी लड़की घुट-घुट के जान नही देती, अपितु जीवन संघर्ष में विजित होती हुई अपना विश्व निर्मित करती है। यहाँ एकल परिवार की समस्या है तो उसका समाधान भी है। वह 'मित्रो मरजानी' की तरह भड़ास नहीं निकालती। सुनिधि का सौम्य चिंतन उदात्तीकरण की प्रक्रिया दर्शाता है। इसे यों कहा जा सकता है कि यदि अवसाद की स्थिति में है तो उसे किसी लक्ष्य में स्वयं को झोंक देना चाहिए, तो उसकी भावनाओं का उदात्तीकरण हो जाता है। समय और परिस्थितियों के संजाल मे उलझने के बजाय अपने आप को लक्ष्यप्राप्ति में खपा देना चाहिए। तब वह सफलतम जीवन जीता है। सुनिधि उपलब्धियों की सीढ़ी दर सीढ़ी चढ़ती चली जाती है। यह स्त्री विमर्श का वैज्ञानिक रूप जो तथाकथित स्त्री विमर्श में प्राप्त नहीं होता। स्त्री-पुरुष के संबंध, साहित्य के मुख्य कथ्य रहे हैं। कहानी और उपन्यास में दोनों संबंधों के विविध रूप विस्तार से वर्णित किया जा रहा है। बादलराग में भी स्त्री -पुरुष के संबंधों को रूपायित किया गया है। नायिका सुनिधि अपने प्रेमी विकास से कहती है कि वह सब कुछ कर सकता है। केवल सेक्स को छोड़कर। विकास चाहता तो कई स्थितियों का लाभ उठा सकता था, परंतु उसने ऐसा नहीं सोचा। इसके विपरीत वह सुनिधि को सचेत करता है कि वह सीमाओं को समझे। प्रेम की चरम परिणिति यही है। प्रेम प्रतिदान नहीं चाहता। प्रेम को परिभाषित करना ही कठिन है। बादलराग में सेक्स, शरीर की भूख और प्रेम में अंतर स्पष्ट किया गया है। नायिका सुनिधि का चरित्र-चित्रण भी स्वाभाविक रूप से विकसित होता चला जाता है। उसके उतावलेपन में उच्छृंखलता कहीं नहीं है। बादलराग में प्रेम को शरीर से नहीं मन और आत्मा से जोड़ा गया है। ऐसा ही प्रेम चिरंतन बनता है। सुनिधि विकास को भलीभांति जानती है कि वह किन परिस्थितियों के बीच फँसा है। सुनिधि, विकास के परिवारिक जीवन को नष्ट नहीं करना चाहती। विकास को पाना तो चाहती है। उसके परिवार के टूटने की कीमत पर नहीं। यही प्रियप्रवास की राधा जो श्रीकृष्ण की प्रेमिका तो है परंतु बादलों से कहती है कि किसान के पास रूक कर पहले छाया प्रदान करे। विकास के आग्रह के बावजूद सुनिधि द्वारा पुनर्विवाह न करना इसी बात का प्रतीक है।

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 जुलाई 2018
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

'काला सूरज' में पूंजीवादी विमर्श

'कालासूरज' उपन्यास में दामोदर खड़से ने हमारी वर्तमान पत्रकारिता को परत-दर-परत उघाडा है। सत्ता, समृध्दि संसाधनों के गलियारों से गुजरती पत्रकारिता व्यावसायिकता की परिधि में घिरती है और आदर्श की तलाश में समर्पित युवा-पत्रकार को निहित स्वार्थो के घेरे में लेकर उसे पूरी तरह विचलित कर देती है। जीवन की अर्थवत्ता और पेशे की सार्थकता की तलाश में नायक कैलाश ग्रहण का शिकार हो जाता है। इस उपन्यास में समाज के तमाम चरित्र उजागर होकर जीवंत हो उठे हैं। असुरक्षित और अभावग्रस्त स्थितियों में पले-बढ़े व्यक्ति के जीवन में एक ओर जहां संबंधों का उफनता सैलाब है, वहीं विकर्षण का रेगिस्तान भी है। अस्तित्व चरमरा उठता है। साथ ही स्नेह, समर्पण, और सान्निध्य का संबंल भी है, जिसे अंधे कुंए में शहद की बूंद की अनुभूति की तरह ही पाया जा सकता है। यश और कीर्ति की जीत से शिखर पा सकते है। लेकिन शिखर पर फिसलन बहुत होती है। क्षुद्र आकर्षण ढलान का रास्ता दिखा देते हैं। सूरज कितना ही प्रखर क्यों न हो स्वार्थ का ग्रहण लगते ही काला पड़ने लगता है। 'काला सूरज' उपन्यास संघर्ष और उपलब्धि के बीच की भटकन और मानवीय संबंधों के यथार्थ को रूपायित करता है।

"'कालासूरज' अपने नायक कैलाश के बहाने आज की पत्रकारिता पर हावी हो चली कैरियरवादी प्रवृत्ति और अखबार मालिकों के निहित स्वार्थों की जुगलबंदी को उद्घाटित करने का प्रयास करता है। मगर एक दिन ऊंचे संपर्कों वाले अखबार मालिकों के भी संभवतः अपने स्मगलर की स्टोरी छाप देने पर उसे छोटे-बड़े अनेक प्रश्नचिह्नों तले रौंदा जाता है। वह सोचता है जब 'उसकी मेहनत, प्रयत्न पुरस्कृत होने चाहिए उसे अपमानजनक स्थिति से गुजरना पड़ता है।' अपने विचारों से वह जड़ मार्क्सवादी नहीं है बल्कि घोर प्रगतिशील है, लेकिन इस प्रगतीशीलता के एवज में उसे मिलता है घनघोर अकेलापन, उपेक्षा, कुंठा और निराशा।"[3]

उपन्यास 'कालासूरज' में नायक पत्रिका की आरे से संपूर्ण सूर्यग्रहण के अवसर कवर करने के लिए कैलाशपुरी जाता है। अपने वैज्ञानिक पति के साथ गीता भी वहां आई हुई है और उनकी बरसों बाद एक बार फिर से मुलाकात होती है। बहरहाल, कहानी आगे बढ़ती है और कैलाश की एक अन्य युवा-पत्रकार पामेला से मुलाकात और फिर प्रगाढ़ता हो जाती है। इस बीच एक बार कैलाश अपनी पत्नी और बच्ची के पास भी जाता है और वहां से खाली हाथ लौट आता है। पामेला के साथ उसकी प्रगाढता अंतरंगता में बदलती है और बेहद स्वाभाविक रूप में वह शारीरिक संबंधों में भी उतर आती है। इसी बीच कैलाश एक दैनिक का संपादक नियुक्त होकर दिल्ली चला जाता है और पामेला उसकी बिटिया को कलकत्ता में जन्मती है। कैलाश दैनिक का संपादक होने पर पूर्णतः बदल जाता है-शराब और धंधे में धुत्त! अपने इस पतन को वह जान भी जाता है। अचानक उसे हार्टअटैक आता है। स्वस्थ होने के बाद कैलाश कलकत्ता जाता है। यह पता लग जाने पर कि पामेला की बेटी स्नेहा उसकी ही बेटी है, वह उसे अपने साथ ले आता है। अपनी बेटी में वह पामेला के गुणों को निहारता है और जीवन पर मानो फिर से विचार करना आरंभ करता है। शायद वह अपने चरित्र की दुविधा से निकल जाता है। यह बात निस्संदेह स्वीकार की जा सकती है कि 'कालासूरज' दिवालिया होती जा रही पत्रकारिता की साख,

और प्रेमवियोग आदि की ताजा और व्यावहारिक अवधारणाओं को बताने से चूक जाता है। वैचारिक खुलेपन से ओतप्रोत इसके पा - खास तौर से पामेला और गीता, उसके पति अमित - सहज ही लुभाते हैं। कैलाश में मानवीय गुण-अवगुण एक साथ देखे जा सकते हैं तो भी उसमें से 'नायकत्व ' को बाहर नहीं छिटका जा सकता।

निष्कर्ष

उत्तर आधुनिक काल की शुरूआत सुधीश पचौरी के अनुसार 90 के दशक से मानी जाती है। यदि 90 को प्रस्थान बिंदु माने तो 90 से 2000 सन् काल तक भारी बदलाव भारत देश में हुए। कथा-यात्रा के प्रावहमय सृजन की प्रक्रिया निरंतर जारी है। भूमंडलीकरण, बाज़ारीकरण और माल-संस्कृति से उत्पन्न जीवन की तमाम विसंगतियों, विडंबनाओं, अंतर्विरोधों आदि से उत्पन्न पात्रों को समकालीन कथाकारों ने प्रभावी ढंग से अपनी कहानियों में ढाला है। शैली-शिल्प और सन्दर्भों के नयेपन को इन कहानियों में धुंआधार विज्ञापनों तले दबा मनुष्य 'उधार लो और घी पियो' के सूत्र को सहते हुए नितांत अज्ञात और एकांतवास में बुदबुदाने पर विवश लगता है। वर्तमान लेखन मनुष्य को ऐसे मूल्यों से प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष आगाह करती लगती है। लेखक एक सामान्य जन है और अपनी सामान्यता की पहचान प्रतिभाशाली लेखक की कृति से करना चाहता है। वह चाहता है लेखक उसके सुख-दुखों से एकरूप हो। डॉ. दामोदर खड़से उन प्रतिभाओं में से हैं जिनके कृतित्व में मध्यवर्गीय जीवन के सुख-दुख की सुगंध है। पाठक उनके कथा-संसार में रमकर आत्मसंतोष और सुख प्राप्त कर लेता है।

संदर्भ ग्रंथ

1 कथा-प्रसंग, यथा-प्रसंग, निर्मला जैन, पृष्ठ 28
2 विमर्श, अकाल में उत्सव, पृष्ठ 72
3 विमर्श, अकाल में उत्सव, पृष्ठ 170
4 विमर्श, अकाल में उत्सव, पृष्ठ 15-16
5 मेरा हमदम मेरा दोस्त, कमलेश्वर, पृष्ठ 40
6 हिन्दी लघु उपन्यास: डॉ. घनश्याम मधुप, पृष्ठ 160
7 आवां विमर्श, करूणा शंकर उपाध्याय, पृष्ठ 17
8 आवां विमर्श, करूणा शंकर उपाध्याय, पृष्ठ 119
9 काग़ज़ की ज़मीन पर, डॉ. दामोदर खड़से, पृष्ठ 21
10 काग़ज़ की ज़मीन पर, डॉ. दामोदर खड़से, पृष्ठ 160
11 काग़ज़ की ज़मीन पर, डॉ. दामोदर खड़से, पृष्ठ 156